P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

अथर्ववेदीय मन्त्र–विद्या का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

पवन कुमार जोशी
शोधच्छात्रः,
संस्कृतम्,
सम्राट–पृथ्वीराज–चौहानः
राजकीय महाविद्यालयः,
अजयमेरुः, राजस्थान, भारत

आशुतोष पारीकः
सहायकाचार्यः
संस्कृतम्,
सम्राट–पृथ्वीराज–चौहानः
राजकीय महाविद्यालयः,
अजयमेरुः, राजस्थान, भारत

सारांश

अथर्ववेदीय मन्त्रों में मन्त्र विद्या का मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध है जो कि संकल्प या आवेश (Self Hypnotism Or Magnatism), अभिमर्श और मार्जन (Mesmerism) और आदेश विद्या या संवशीकरण (Hypnotic Suggestion) इन बातों के द्वारा शारीरिक रोगों को हटाना, उन्माद–भूतोन्माद आदि मानसिक दोषों को दूर करना, दारिद्रय (दुर्गति अकर्मण्यता), अलक्ष्मी (अशोभा) को भगाना, निराशा को हटाना, ईर्ष्या आदि मानस पाप का शमन करना, अशान्ति को दूर करना, दुष्ट स्वप्न के प्रभाव को मिटाना, वीरता आदि गुणों का आवेश करना, यातुधान–नाशन अर्थात् हिंसाकारक प्रयोगों और वस्तुओं एवं प्राणियों को नष्ट करना, शत्रु का घात करना, अपने अन्दर से रोगों और दोषों को हटाकर स्वास्थ्य तथा अच्छे गुणों को लाना आदि विषयों का वर्णन अथर्ववेद में है। अथर्ववेदीय मन्त्रों में मन्त्र–विद्या के विभिन्न अच्छे–बुरे उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में स्पष्ट किया गया है कि सत्य की शक्ति सर्वोत्तम है।

मुख्य शब्द : मन्त्र तथा मन्त्र विद्या,जादू, आयुर्वैदिक, मनोवैज्ञानिक, संकल्प और आवेश, अभिमर्श और मार्जन, आदेश विद्या या संवशीकरण, उन्माद रोग, मानसिक दोष, जादू–टोना, सर्पदष्ट विषनाशन।

प्रस्तावना

मन्त्र कहते हैं गुप्त भाषण और मनन करने योग्य सिद्धान्त को, क्योंकि "मत्रि गुप्त भाषणे" (चुरादिगण धातु) से मन्त्र शब्द बना है। "मन्त्रा मननात्" इससे गुप्त भाषण और रहस्य का नाम मन्त्र हो सकता है।[1] उसका क्षेत्र अधिकारी तक परिमित रहने से वह मन्त्र कहलाया या अधिकारी वा जनसाधारण तक न पहुँचने और उसे न समझ सकने के कारण वह मन्त्र या जादू के नाम से कहा जाता है। उस ऐसे आदेश का नाम भी मन्त्र है जिसके उच्चारण मात्र से किसी पात्र पर प्रभाव पड़ जावे। वह उसके कहने के अनुसार काम करने लगे, क्योंकि वाणी का नाम भी मन्त्र है–"वाग्वै मन्त्रः"[2] इससे वाग्विद्या और विचार–विद्या का नाम मन्त्र है।[3]

संकल्प और आवेश

संकल्प और आवेश की विद्या सर्वश्रेष्ठ है। प्रबल तथा साधिकार इच्छा का नाम संकल्प है और उसका पुनः पुनः आवर्तन आवेश कहलाता है। मनोविज्ञान का सर्वप्रथम आधार क्षेत्र संकल्प और आवेश है। मन की सर्वप्रथम गति संकल्प है अपितु संकल्प ही मन का सार और उसके विकास का कारण है। संकल्प ही मनोविज्ञान का कारण और आधार है, मन में प्रथम संकल्प होता है पुनः वह उद्यमरूप संकल्प अर्थात् साधिकार संकल्प बन अभीष्ट भाव को मन में आवर्तित कर के संगृहीत करता है, इस प्रकार पुनः पुनः आवर्त्तन के अभ्यास से मन आन्दोलित हो विद्युत् की भाँति अपनी पूर्ण शक्ति को अभीष्ट भाव की ओर प्रेरित करके उसे आकर्षित कर लेता है । जिस प्रकार विद्युत् की दो तरंगें होती हैं, उसकी शक्ति को व्यक्त रूप में लाती हैं और पुनः विविध कार्य में उपयुक्त करती हैं एवं मन की भी दो तरंगें हैं, वेद में उन्हें बोध और प्रतिबोध नाम से कहा हैं ।[4] इनको लौकिक भाषा में संकल्प और विकल्प कहते हैं । बोध या संकल्प में स्वप्न अर्थात् विस्मृति या निराभाव नहीं होता। वह अभीष्ट भाव में लगा रहता है और प्रतिबोध अर्थात् विकल्प जागृत होता रहता है। वह अनभीष्ट को हटाता रहता है, उसके अभीष्ट से मिलने नहीं देता। इस प्रकार संकल्प (अभीष्ट प्राप्ति की इच्छा) विकल्प (अनभीष्ट निवारण की इच्छा) परस्पर मिलकर संकल्प से विकल्प और विकल्प से संकल्प बल पाकर मानसिक विद्युत् को उत्पन्न कर देते हैं, पुनः विशुद्ध अभीष्ट का आकर्षण और अनभीष्ट का निवारण करके कृतकार्य हो जाते हैं । जैसे विद्युत् की दो तरंगें प्रकाश और दाह को देने वाली हैं, एवं मन की ये संकल्प और विकल्प तरंगें मनुष्य के जीवन क्षेत्र में अभीष्ट गुणों को प्रकाशित और अनभीष्ट को दग्ध कर देती हैं। इसके द्वारा

मनुष्य अपने अन्दर से पाप, निर्बलता और त्रुटि को दूर कर सकता है तथा सद्गुणों, बल और उत्साह का अपने में आवेश कर सकता है।

अथर्ववेद में इस प्रकार दुर्गुणों के बहिष्करण और सद्गुणों के आवेश का प्रतिपादन बहुत स्थलों पर किया है।[5] उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

पाप को हटाने का संकल्प

मन में पाप भाव आने पर उसे हटाने के लिये यहाँ वेद ने दो उपाय या प्रयोग बतलाएँ हैं। एक तो प्रतिबोध या विकल्प अर्थात् अनभीष्ट पापभाव में दोषदृष्टि या घृणा को उत्पन्न करना उसके लिये नगर से बाहर किसी एकान्त शान्त जंगल और वन में जाकर घृणा उत्पन्न कर उस पाप भाव को वहाँ ऐसे त्याग देना, जैसे–हानिकारक किसी जन्तु को छोड़ जाते हैं। उसके सम्बन्ध में पुनः पुनः दोषदृष्टि या घृणा का आवर्तन कर–कर के पूर्ण–रूपेण सदा के लिये त्याग देना। दूसरे मन में उस पाप भाव के स्थान में घर के स्त्री पुत्रादि बन्धुओं के प्रति अपने कर्त्तव्य का विचार करके मन को उधर लगाए रखना यही मन की दूसरी शक्ति बोध या संकल्प है। इस प्रकार दोनों के परस्पर आवर्तन, अभ्यास और अनुष्ठान से हटाने योग्य दोष अवश्य दूर हो जावेगा। इसके लिए मानसिक पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।[6]

आशा, उत्साह और सफलता प्राप्ति का संकल्प

प्रत्येक कार्य करते हुए मन में इस प्रकार आशा और उत्साह को बनाए रखना चाहिए कि कर्म करना और उसमें सफलता प्राप्त करना मेरे दाएँ–बाएँ हाथों का खेल है। न मैं कर्महीन हो सकता हूँ और न उस कर्म में कभी विफल, किन्तु सदैव सफलता प्राप्त करना मेरा अधिकार है, मुझे धैर्य के साथ काम में लगे रहना है। शीघ्र नहीं तो देर से कभी न कभी अन्त में सफलता अवश्य ही प्राप्त करना है।[7]

शक्ति प्राप्ति के लिये संकल्प

जैसे विद्यावान् के संग से विद्या और तेजस्वी अग्नि के संग से तेज का लाभ होता है एवं पूर्ण तेजस्वी, पूर्ण वीर्यवान्, पूर्ण बलवान्, पूर्ण ओजस्वी प्रभाववान् और पूर्ण साहसी परमात्मा के संग से तेज, वीर्य–बल, ओज, प्रभाव और साहस का प्राप्त होना अत्यन्त सम्भव तथा अनिवार्य है।[8] अवगुणों को दूर करने, सद्गुणों के आवेश करने की भाँति रोगों को दूर करने, स्वास्थ्य–बल का आवेश करने के लिए भी वेद का विधान हैं।[9]

रोगा ंको दूर करने का संकल्प

मन में संकल्प–विकल्प के द्वारा जैसे दुर्भावों को दूर करने और सद्भावों को अन्दर आवेश करने की शक्ति है एवं रोग को दूर करने और स्वास्थ्य तथा बल का आवेश करने की भी शक्ति है [10] क्योंकि मन का स्थान हृदय है।[11] हृदय ही जीवन शक्ति का स्थान है वही प्राणशक्ति का केन्द्र है। मानसिक भावनाओं से परिपुष्ट प्राणों की गति होने से रोगों का बहिष्कार और स्वास्थ्य तथा बल का संचार शरीर में हो जाना अनिवार्य है। मन के संकल्प और विकल्प प्राण के रक्षक हैं।

हाथी के बल को अपने अन्दर आवेश करने का संकल्प

हाथी के बल को अपने अन्दर आवेश करने के सम्बन्ध में मन्त्र का संकेत है। योगदर्शन में संयमप्रकरण में लिखा है–"बलेषु हस्तिबलादीनि।"[12] हाथी के बल में संयम अर्थात् धारणा ध्यान समाधि करने से हाथी का बल प्राप्त होता है हाथी को देखते हुए या उसकी अनुपस्थिति में हाथी की आकृति को मन में चित्रित करके उसके बल को अपने अन्दर लाने का आन्तरिक प्रयत्न करना चाहिए। मन से प्रतिदिन कुछ काल तक निरन्तर अभ्यास करने से अपूर्व लाभ प्राप्त होता है। इस विधि का अभ्यास शान्त बैठकर ध्यान द्वारा तथा व्यायाम करते हुए भी करना चाहिए। व्यायाम करते हुए वैसी ही हाथी–जैसी चेष्टाएँ करना और अपने अंगों को बीच–बीच में देखते जाना मानसिक प्रभाव डालकर हाथी–जैसी पुष्टि तथा बल लाने का अनुभव करना कि वे पुष्ट हो रहे हैं, उनमें बल आ रहा है।[13] संकल्प शक्ति का विषय मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध रखता है।[14]

अभिमर्श और मार्जन

अभिमर्श शरीर में सनसनाहट उत्पन्न कर देने वाले स्पर्श का नाम है। जिस अंग में सनसनाहट उत्पन्न हो जाती है वहाँ के आन्तरिक तन्तुओं में विचित्र विद्युत् की लहरों–जैसी गति उत्पन्न हो जाती है जो न केवल उस ही अंग पर प्रभाव डालती है किन्तु अन्यत्र भी उसका प्रभाव पड़ जाता है। अभिमर्श से रोग तथा मानसिक दोष दूर किये जा सकते हैं। इस अभिमर्श विद्या को पाश्चात्य विद्वान् मेस्मरिज्म (Mesmerism) कहते हैं और अभिमर्श–क्रिया को पास (Passes) करना कहते हैं। अभिमर्श के द्वारा चिकित्सा करने का अथर्ववेद में वर्णन है, हम यहाँ कुछ मन्त्रों से इसको प्रदर्शित करते हैं।[15]

रोगी को खुली अँगुलियों वाले हाथों से अभिमर्श करने का विधान इन मन्त्रों में है। अभिमर्श प्रभावकारी स्पर्श का नाम है और वह तब हो सकता है जब कि रोगी के अंग को स्पर्श करने में प्रयोजक के हाथ ढीले हों और अँगुलियों का स्पर्श अंग पर भार न डाले (किंचित् ही स्पर्श हो) जो कि अँगुलियों के आगे सरकने से रोगी के उस अंग में या बाहर भीतर त्वचा में एक संस्पर्श (सनसनाहट) उत्पन्न कर दे, इस ऐसे स्पर्श का ही नाम अभिमर्श (Passes) है। अभिमर्श दो प्रकार का होता है एक तो गतिरूप दूसरा स्थानिक गति रूप अभिमर्श। अँगुलियाँ फैलाए हुए हाथों का धीरे–धीरे ऊपर से नीचे या आड़ी ओर सरकाने को कहते हैं यह रोगों या मानसिक दोषों को दूर करने में हितकर है। दूसरा स्थानिक अभिमर्श एक स्थान में ही पुनः पुनः स्पर्श करने का नाम है। यह बल सुख शान्ति या सद्भावों के भरने में उपयुक्त हैं। उक्त दो प्रयोजन अभिमर्श के हैं जो "अयं मे हस्तो भगवान्"[16] से वेद में कहे हैं।

मार्जन या पुरश्चरण

मार्जन या पुरश्चरण में जहाँ तक वैज्ञानिक सम्बन्ध है वहाँ तक तो वह ठीक प्रतीत होता है परन्तु शेष केवल ढौंग तथा मिथ्या ही प्रतीत होते हैं । मार्जन या पुरश्चरण के साधन पदार्थ जल, वस्त्र, कूर्च आदि हैं। इनके द्वारा मार्जन या पुरश्चरण के कुछ उदाहरण संक्षेप में इस प्रकार हैं–

जल से

मस्तिष्क में चक्कर आने, अचेत हो जाने (बेहोशी) और सर्प काटे पर जल के छिड़क देने से लाभ

होता है। यह बात कोई मन्त्र विद्या या जादू की नहीं है किन्तु वैज्ञानिक है और आयुर्वेद के साथ सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक डाक्टर और वैद्य इसके साक्षी हैं। जो लोग इसे मन्त्र विद्या या जादू कहते हैं वे भ्रम में पड़े हुए ज्ञात होते हैं। ऐसे लोग किसी साधु या महात्मा के हाथों से बेहोश हुए को जल छिड़के जाने पर होश में आ जाना उसको जादू समझते हैं। जल से मूर्छा बेहाशी आदि रोग हटाने के गुण आयुर्वेद में बतलाये गये हैं।

वस्त्र से

जल में भीगे मोटे वस्त्र का स्पर्श आँखों और सिरदर्द तथा अचेतना के लिए हितकर है। यहाँ तक तो ठीक है परन्तु किसी व्यक्ति को रूमाल मारकर जादू से अचेत कर देना अवैज्ञानिक है। रूमाल में कोई अचेत कर देने वाली गन्ध लगा देने से ऐसा हो जाता है। [17]

कूर्च से

कोई कोई रोग ऐसा होता है जो कि किन्हीं बालों के पुरश्चरण अर्थात् झाड़न, ब्रुश से दूर होते हैं। अतिप्राचीन काल से चमरमृग (चँवरी गौ) के पुच्छ की बालमंजरी का उपयोग चला आता है उसके स्पर्श से त्वचा के दोष, कृमियों के संसर्ग से हुए रोग दूर होते हैं, शरीर में ओज बल प्राप्त होता है। अथर्ववेद में कहा भी है "यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विवृहामसि"[18] कश्यप का अर्थ वैद्यक–शब्द–सिन्धु में मृग विशेष दिया है जो चमरमृग के लिए है "कश्यप मृगविशेषः" (वैद्यक शब्द सिन्धुः) शरीर में पित्ति उछल आने पर जुलाहे के ताना सँवारने वाले कूचे (ब्रुश) से पुनः पुनः अनुलोम स्पर्श से पित्ति दब जाती है। इसी प्रकार तृणों के पुरश्चरण झाड़ू से, झाड़ने या स्पर्श से कई रोगों में लाभ होता है विशेषतः रक्त विकार के रोगों को।

आदेश विद्या या संवशीकरण

सबल और सफल आश्वासन या उपदेश का नाम आदेश है जिसका कि पात्र पर प्रभाव अनिवार्य हो। आदेश द्वारा किसी रोगी के रोग को दूर करना उसके अन्दर स्वास्थ्य को लाना, किसी दुर्व्यसनी या पापी के दोषों को हटाना और उसके अन्दर सद्गुणों को लाना ओजबल एवं वीरता को प्रविष्ट कराना आदि होता है । आदेश से प्रायः सभी रोगों में लाभ होता है परन्तु विशेषतः मानसिक रोगों एवं शारीरिक स्थायी, क्षैत्रिय, क्षय, पाण्डु तथा मस्तक के रोगों में अतीव लाभ होता है। आदेश के अन्दर प्रयोजक (प्रयोग करने वाले) की वाणी और मन काम करते हैं और इन दोनों के द्वारा पात्र (जिस पर प्रयोग हो उस) के मन पर प्रभाव प्रथम पड़ता है, मन समस्त शरीर, प्राणों–प्राणाशयों और इन्द्रियों को प्रेरित करने वाली विद्युत्–शक्ति है। मन प्रभावित हुआ स्वनुकूल स्वशक्ति से इन सबको चेष्टायमान करता है। पुनः शीघ्र या धीरे धीरे साधनानुसार अभीष्ट परिणाम का साधक हो जाता है। अथर्ववेद में इन सब विधियों, प्रयोगस्थलों और परिणामों का वर्णन किया गया है।

मानसिक दोष दूर करने का आदेश

अथर्ववेद[19] में ईर्ष्या को दूर करने का आदेश दिया है। मन्त्रों के अनुसार पात्र को सम्मुख बिठलाकर आश्वासन के साथ उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करके तथा स्वाधीन और अनुकूल बनाकर सर्वथा शान्त सोए हुए जैसी अवस्था में लाकर उपर्युक्त ईर्ष्या दूर करने का आदेश दे कि "मेरे प्यारे पुत्र आदि पात्र ! तुम्हारे अन्दर जो ईर्ष्या है–दूसरों की उन्नति समृद्धि देखकर जलना द्वेष करना है यह बहुत बुरा है हृदय के अन्दर यह धधकती अग्नि है तुम्हारे हृदय, जीवन रस, रक्त, और शरीर को जलाने वाली है इसे मैं बुझाता हूँ, बुझा रहा हूँ , अब तुम्हारे अन्दर वह फिर न सुलगेगी तुम फिर कभी इसे सुलगाने का यत्न न करना यह ईर्ष्यारूप अग्नि मन को भी भस्म बना देती है उसकी शक्ति को नष्ट कर देती है पुनः वह मनुष्य जड़ पदार्थ या मुर्दे जैसा विचारहीन हो जाता है। वह हृदय में रखा मन अपनी शक्ति से युक्त रहे अतएव मैं तुम्हारे मन के अन्दर से इस ईर्ष्या को बाहर निकालता हूँ और ऐसी सुगमता से कि जैसे चाम की धोंकनी से भरी फूँक जरा दबाने से बाहर निकल जाती है। निश्चय रखो मैं तुम्हारी ईर्ष्या को बाहर निकाल रहा हूँ– वह निकल रही है– वह समय शीघ्र आवेगा जबकि सर्वथा बाहर निकल जावेगी। तुम स्वयं अनुभव करोगे कि वह बाहर निकल रही है। जब तुम देखोगे कि तुम्हारा मन शान्त, प्रसन्न और मस्तिष्क उष्णता से रहित ठण्डा, हल्का तथा हृदय घबराहट से पृथक् हल्का, स्वस्थ और स्वच्छ है। इस प्रकार प्रतिदिन तुम अपने को ईर्ष्या–अग्नि से अधिकाधिक अलग पाओगे।"

उन्माद रोग के लिए आदेश

उन्माद रोग दो प्रकार के बतलाएँ हैं। मस्तिष्क के आन्तरिक जन्तु जब विशेष कफलिप्त या जड़ हो जाते हैं तब मन मूढ़ होकर शान्त उन्माद को उत्पन्न करता है इसे आयुर्वैदिक परिभाषा में उन्माद या शान्त उन्माद कहते हैं और जब मस्तिष्क में वात पित्त–प्रकोप से तन्तु क्षुब्ध या दग्ध हो जाते हैं तब मन क्षिप्त, विक्षिप्त और भ्रमयुक्त होकर प्रलापोन्माद को उत्पन्न करता है इसे आयुर्वैदिक परिभाषा में भ्रमोद्वेग तथा भूतोन्माद कहते हैं। इस भ्रम–जन्य–उन्माद में भ्रम से रोगी अपने अन्दर विषम बातों को अनुभव करता है या पुरातन मिथ्या विश्वास से संस्कारों से भिन्न–भिन्न विकट स्थितियों की कल्पनाएँ अपने अन्दर कर लेता है और मैं भूत, प्रेत, चुडेल, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा आदि हूँ ऐसा प्रलाप करने लगता है। ऐसा उन्माद अग्नि में लाल–मिर्च, राई, सरसों, वायुविडंग, हींग, लहसुन आदि चरपरी और तीक्ष्ण औषधि को डालकर धूआँ सुंघाने से दूर हो जाता है। क्योंकि उस चरपरे और तीक्ष्ण धूँए से मस्तिष्क के तन्तुओं में उसकी परिस्थिति से विपरीत गति और सचेतना मिलती है। मस्तिष्क में उस भूत आदि के भ्रम या कल्पना का अनवसर या अभाव हो जाता है पुनः तुरन्त आदेश साथ में देने से रोगी अनुभव करता है कि उन्माद–चिकित्सक के प्रभाव से उन्माद दूर हुआ है यह विश्वास हो जाने से पुनः वह उन्माद चला जाता है। इसी प्रकार शान्त उन्माद रोग के अन्दर सात्विक गंध वाले कपूर, चंदन, तुलसी या तुलसीबीज अथवा सुगन्ध होम करके धुँआ सुंघाने से रोगी के मस्तिष्क के तंतुओं में विकास जागृति और प्रसाद आता है, और पुनः वह स्वस्थ हो जाता है।

यक्ष्मज्वर–क्षय रोग दूर करने के लिए आदेश

अथर्ववेद में कुछ मन्त्रों में यक्ष्मज्वर–क्षय रोग दूर करने के लिए आदेश मिलता है। अथर्ववेद में

कहा गया है कि–"हे प्रिय रोगी ! तू मेरे द्वारा आमन्त्रित हुआ–मेरी ओर आकर्षित हुआ, मेरे आदेशानुकूल बन समझदार होता हुआ जीवन पथ के उदय को–स्वास्थ्य को फिर प्राप्त कर और उस जीवन पथ के आरोहण अवलम्बन तथा आक्रमण आगे बढने को भी प्राप्त हो। यही प्रत्येक जीवित रहने वाले का आश्रय है–लक्षण है।"[20] अथर्ववेद में ही एक मंत्र में कहा है कि–"यह सुनियन्त्रित–मितभाषण और सत्यभाषण में संयमित तथा विद्युत् की भाँति पुनः पुनः स्पन्दन करती हुई लहरें फेंकती हुई मेरी वाणी अन्दर से कह रही है– भीतर से बोल रही है कि तुझ चिकित्सक से प्रेरित की हुई अथवा तुझ रोगी से 'विभक्ति व्यत्ययः' यक्ष्मा रोग को निराकृत निवृत्त कर देती हूँ तथा रोग के सैंकड़ों और सहज रोगांकुरो–उपद्रवों को भी निराकृत कर देती हूँ–हटा देती हूँ।"[21] यक्ष्मा या क्षयरोग होने पर फेफड़ो में दर्द रहता है, अंग–अंग में ज्वर और हृदय में घबराहट होती है, हृदय में रक्त के जीवन कणों का क्षय होता रहता है। जीवन की आशा मरती रहती है । इसी यक्ष्मा या क्षयरोग के लिए मन्त्रों में आदेश द्वारा चिकित्सा करने का विधान है।

मृत्यु से उभरने का आदेश

"जीवतां ज्योतिरभ्येरूर्वाड.ात्वा हरामि शत शारदाय।
अवमुचंन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते
दधामि।।"[22]

इस मन्त्र में रोगी को रोग से विमुक्ति और जीवित रहने का आदेश दिया है कि– "हे प्रिय रोगी! तू जीने वालों की ज्योति को प्राप्त कर। जीने वालों की भाँति जीवन कान्ति और उत्साह को धारण कर। मैं चिकित्सक तुझे पूर्ण आयु तक जीवित रहने के लिए अपने अधिकार में ले आया। हे प्रिय पात्र! चिन्ता या भय की कोई बात नहीं, मैं समस्त रोगों और तुम्हारें अन्दर की निराशा आदि भावनाओं को दूर करता हूँ। तुम्हारे अन्दर दीर्घ जीवन की शक्ति डालता हूँ। निश्चय रखो अब तुम दिनों दिन दीर्घ जीवन की ओर चलोगे।"[23] इन मन्त्रों में इस आशय का आदेश रोगी को देने का विधान किया गया प्रतीत होता है कि "हे प्रिय रोगी! तू स्मरण रख इसी शरीर में तू स्वस्थ और प्रसन्न रहता हुआ पूर्णायु को भोगेगा। मैं तुझे जीवन निराशा की ग्रन्थियों और उलझनों में से अपने सत्य आदेश द्वारा निकाल रहा हूँ। तू निश्चय रख ओर देख अब से तेरे स्वास्थ्य का उदय ही उदय हो रहा है। मैं तेरे अन्दर जीवन शक्ति को डाल रहा हूँ और बल भी दे रहा हूँ बस अब तू इस शरीर पर पूर्ण आधिपत्य और अधिकार रखता हुआ बुढ़ापे तक जीवन के अनुभव का लाभ प्राप्त करेगा क्योंकि तेरे शरीर में अब कोई दोष नहीं रहेगा जो तुझे हानि पहुँचा सके।"[24]

वीरता के लिए आदेश

"वृषा रूसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राह मिन्द्र पौंस्यम्।।"[25]

समाज या राष्ट्र के रणक्षेत्र में आने वाले वीर या राजा को मन्त्रानुसार आदेश देना चाहिए कि– "हे वीर पुरूष! तू अपने को सबल समझ, साँड़ जैसा बलवान् प्रभावशाली समझ, वास्तव में तू महाबलवान् है, बड़ा प्रतापी और शूरवीर है, तू समाज तथा राष्ट्र की समृद्धि और अभ्युदय के लिए जन्मा है, तेरी शूरवीरता जाति और देश को उठाने के लिए है, तू शत्रु पर सबल और सफल आक्रमणकारी है। शत्रु पर तेरे बल का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, निज क्षात्रबल और क्षात्रधर्म का अभिमानी है। देश तथा राष्ट्र के हित में तेरा सर्वस्व है, तेरे अन्दर शत्रु–हनन का साहस है, शत्रु पर विजय पाने का साहस है, निश्चय ही तू सदा जिष्णु–जयशील है किसी भी रणक्षेत्र में विजय पाना तेरे लिए अवश्यम्भावी है।"[26]

सर्पदष्ट विषनाशन के लिए आदेश

साँप के काट लेने पर विष नष्ट करने के आदेश को मन्त्र कहा जाता है और मन्त्र नाम है गुप्त रहस्यमय विचार का। सर्वसाधारण जिस सिद्धान्त को न समझ सके वही मन्त्र है या मन्त्र विद्या है, वास्तव में आश्वासन का सफल ढ़ंग ही आश्वासन विद्या या मन्त्र विद्या है।"[27]

घने अन्धकार में किसी जन्तु के काट लेने पर सर्प के काटने की शंका हो जाने से उस व्यक्ति को ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह, दस्त ये सर्पदष्ट के उपद्रव हो जाते है।[28] इसकी चिकित्सा आश्वासन है। ऐसे रोगी को बुद्धिमान् जन विविध आश्वासन दे, यह चरककार का कथन है। परन्तु वेद तो सर्प के काटे से भी मरना नहीं मानता, वेद में कहा गया है– "साँप का काटा भय से मरता है।"[29] वेद का यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि प्रथम–सर्प विष की मीमांसा करने से सभी सर्पाचार्यो का कथन है कि पचास प्रतिशत विष वाले सर्पो में से भी पच्चीस प्रतिशत सर्प अल्पविष वाले है उनके काटने से भी मनुष्य मर नहीं सकता यदि मरते हैं तो भय से। शेष पच्चीस में से भी आधे बारह दशमलव पाँच प्रतिशत सर्प ही महाविष वाले है और फिर इनमें बच्चे, अतिवृद्ध, रोगी, कृश, केंचुली छोड़ते हुए, डरे हुए, नेवले से पछाड़े हुए, जल के ताड़े हुए का अल्प विष होता है।[30] अब तो और भी कम महाविष के सर्प रह गये जो साढ़े बारह प्रतिशत में अधिक से अधिक छह प्रतिशत हुए । फिर इनके भी दष्ट(डंक–घाव) तीन प्रकार के हाते हैं "सर्पित (सर्पदष्ट विष के पूर्ण लक्षणों वाला), रदित (सर्पदष्ट विष के अल्प लक्षणों वाला), सर्पांगाभिहत (सर्प के अंगों से स्पर्श हुआ या घिसा हुआ मात्र) ये तीन होते है।" तब तो महाविष सर्पो के काटे के महाविष स्थान छह में से दो ही रहे इस विचार से तो सर्पो के काटे हुए सौ में से दो ही अधिक से अधिक मरने चाहिये। परन्तु इनका भी तुरन्त बन्धन आदि उपचार हो जावे तो यह भी नहीं मर सकते यदि मरते हैं तो भय से ही मरते हैं और वेद में तो इन दो को भी चाहे बन्धन न भी बाँधा हो "भियसा नेशत्"[31] भय से ही मरते हैं ऐसा कहा गया है। जब ये बात है तब आश्वासन चिकित्सा करना अत्यावश्यक है और रोगी मरने से बच जाता है । अतएव वेद सर्पदष्टविष वाले मनुष्य को मरने से बचाने का आदेश देने का विधान करता है।

सर्प काटे को देर हो जाने पर औषध उपचार करते हुए भी ठण्डे अभिमर्श (स्पर्श) करते और आदेश देते रहना चाहिए । आदेश–चिकित्सक गम्भीर, सत्यवादी, संयमी, हित दृष्टिमान् होगा तो प्रभाव अधिक पड़ेगा। "सुश्रुत" में भी मन्त्र चिकित्सकों को संयमी रहने को कहा गया हैं ।[32]

निष्कर्ष

मन्त्र विद्या को लोग जादू कहते हैं। जादू शब्द फारसी भाषा का है । वहाँ इसका अर्थ किन्हीं ऐसे गुप्त प्रयोगों का नाम है जिनसे बाजीगरी के खेल तमाशे, आश्चर्यजनक अद्भुत अमानुषी कौतूहल करिश्मा और हिंसा–परघात किया जाता है । अथर्ववेद में शत्रु–सेना के वधार्थ इन्द्रजाल रचने का वर्णन आता है। वहाँ विद्युत् आदि पदार्थो द्वारा ऐन्द्रजालिक विधियों से शत्रु–सेना को क्षुब्ध, भयभीत, पीड़ित और हिंसित करने का विधान है। तन्त्र–ग्रन्थों में रोग दूर करने, सर्प आदि के विष उतारने के भी वर्णन हैं। ऐसे गुप्त प्रयोगों को मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र नाम से कहा जाता है। संकल्प और आवेश की विद्या सर्वश्रेष्ठ है। अभिमर्श से रोग तथा मानसिक दोष दूर किये जा सकते हैं। अथर्ववेद के गुप्त प्रयोग वैज्ञानिक हैं, परन्तु तन्त्र ग्रन्थों में कहे बहुधा कल्पित और अवैज्ञानिक हैं। इन प्रकरणों को यथावत न समझकर लोगो ने अथर्ववेद में तान्त्रिक जादू को सिद्ध किया। मन्त्र का मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध है।

अंत टिप्पणी

1 *(निरूक्त–7.12)*
2 *(श. 6.4.1.7)*
3 *द्रष्टव्य "अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष, पृ. सं.–4*
4 *अथर्ववेद–(19.52.1)*
5 *अथर्ववेद–(5.30.10)*
6 *अथर्ववेद–(6.45.1)*
7 *अथर्ववेद–(7.52.8)*
8 *यजुर्वेद–(19.9)*
9 *यजुर्वेद–(19.9)*
10 *अथर्ववेद–(20.96.24)*
11 *यजुर्वेद–(34.6)*
12 *(योग विभूतिपाद– 24)*
13 *अथर्ववेद–(3.22.1)*
14 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष–(पृ.सं.–17)*
15 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष–(पृ.सं.–19–20)*
16 *अथर्ववेद–(4.13.6)*
17 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष– (पृ.सं.–23)*
18 *अथर्ववेद–(2.33.7)*
19 *अथर्ववेद–(6.18.1–3)*
20 *अथर्ववेद–(5.30.7)*
21 *अथर्ववेद–(5.30.16)*
22 *अथर्ववेद–(8.2.2)*
23 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष , (पृ.सं.–45)*
24 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष , (पृ.सं.–47)*
25 *ऋ.–(5.35.4)*
26 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष , (पृ.सं–48)*
27 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष , (पृ.सं.–49)*
28 *यह शंका विष कहलाता है–"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष, (पृ.सं.–49)*
29 *"भियसा नेशत्"–अथर्ववेद–(5.13.2)*
30 *"सुश्रुत " (कल्प 4.19,32)*
31 *अथर्ववेद–(5.13.2)*
32 *"अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या", पं. प्रियरत्न आर्ष , (पृ.सं.–54)*